धर्म का आन्तरिक संदेश

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

धर्म बहुत ही व्यापक शब्द है। इसके अंतर्गत भावों की शुद्धता, मन की निर्मलता और सात्विक विचार का अधिक महत्व है। धर्म मूलतः किसी वस्तु का सहज गुण है। जैसे पानी का धर्म शीतलता, अग्नि का धर्म उष्णता और पृथ्वी का धर्म गंध है। इसी प्रकार जितने भी पदार्थ है उन सबका स्वाभाविक धर्म होता है। जब पदार्थों में विकृति उत्पन्न की जाती है तो उनके गुण धर्म भी बदल जाते हैं। आत्मा एक ऐसा तत्व है जिसमें किसी प्रकार की विकृति नहीं आती है। यह अपने स्वरूप में चैतन्य युक्त है। शेष जितने भी पदार्थ हैं वे भौतिक तत्व हैं। उन पदार्थों में परिवर्तन, परिवर्धन होता रहता है। आत्मा और जड़ का जब संयोग होता है तो जड़ पदार्थ भी आत्मवत प्रतीत होने लगता है। शरीर जड़ है और आत्मा चेतन। शरीर से जब आत्मा का संयोग होता है तो जड़ शरीर भी आत्मवत् प्रतीत होने लगता है। शरीर से अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कार्य किये जाते हैं। मूलतः आत्मा के शुद्धि और अशुद्धि का कोई प्रश्न नहीं है। शरीर में शुद्धता और अशुद्धता देखी जाती है। यदि मानव अच्छा कर्म करता है तो पुण्यलोक की प्राप्ति होती है और यदि बुरा कार्य करता है तो उसे नरक की प्राप्ति होती है। इसीको ध्यान में रखकर यह बात कही गयी है कि धर्म आत्मा को शुद्ध करता है। आत्मा को न तो आंखों से देखा जा सकता है, न वाणी से कहा जा सकता है, न तो अन्य इन्द्रियों से उसे जाना जा सकता है, न तपस्या और कर्म से ही उसे जाना जा सकता है। जिसके द्वारा सारी ज्ञानेन्द्रियां अपने–अपने विषय का ज्ञान कराती हैं उसे किस साधन से जाना जाय। इसलिये कहा गया है कि 'ज्ञानप्रसादेन तं पश्यते' अर्थात् ज्ञान के द्वारा ही उसे जाना जा सकता है। जप, तप निखिलकर्मानुष्ठान ये सारे साधन आत्मविषयक आचार में परिगणित हैं, किन्तु ये केवल चित्त शुद्धि तक ही सीमित हैं। शुद्ध चित्त में ज्ञान का प्राकट्य उसी प्रकार होता है जैसे स्वच्छ कांच में प्रति बिम्बोपलब्धि होती है।

धर्म मानव को जोड़ता है तोड़ता नहीं। धर्म की जड़ गहरी होती है। जो परिवार धर्म से जुड़ा होता है वह हरा–भरा रहता है। जो व्यक्ति धार्मिक दृष्टि से कार्य करता है उसका परिवार सम्पन्न होता है। धर्म में आडम्बर नहीं होना चाहिए। धर्म को उत्कृष्ट मंगल कहा गया है। मानव का जीवन आडम्बर हीन होना चाहिए। धर्म सबका कल्याण करता है। इसलिए कहा गया है– अहिंसा परमोधर्मः अर्थात् अहिंसा सर्वश्रेष्ठ धर्म है। धर्म मानव का आन्तरिक गुण है। मानव को धर्म का पालन करते हुए संयमित जीवन व्यतीत करना चाहिए। जितनी आवश्यकता है उतना ही उपयोग करना चाहिए। किसी के अस्तित्व के संकट नहीं बनना चाहिए। धर्म का आन्तरिक संदेश तप है। तप बाह्य और आन्तरिक दो प्रकार का है। बाहर का अंकुश और भीतर का अंकुश धर्म है। भीतर का अंकुश आन्तरिक शोधन करता है। धर्म का मूलमन्त्र आन्तरिक शुद्धता है। आन्तरिक शुद्धता आत्मपवित्रता है। आत्मा का चिन्तन करना आत्मा का मनन करना और आत्मा का निदिध्यासन करना चाहिए। इन्द्रिय नियन्त्रण करना धर्म पालन के लिए अनिवार्य है। इन्द्रिय नियन्त्रण से मानव संस्कारित बनता है। इससे आन्तरिक शुद्धता आती है। बाहर जो कुछ है वह आन्तरिक सत्य का प्राकट्य है। आत्मा के न रहने पर शरीर बेकार हो जाता है। मिट्टी का पुतला मिट्टी में मिल जाता है। शरीर पंचभौतिक तत्वों का पिण्ड है। शरीर तो दिखलायी पड़ता है किन्तु आत्मा नहीं। आत्मा की पवित्रता के बिना शरीर को कितना भी सुसज्जित अलंकृत कर लिया जाये सब बेकार है। आन्तरिक स्वास्थ्य ही वास्तविक स्वास्थ्य है।

ध्यान, तप, लेश्याध्यान, कायोत्सर्ग द्वारा आन्तरिक आत्मा को जाना जाता है। आन्तरिक जगत बहुत बड़ा है। इसे जानने का प्रयास करना चाहिए। सूक्ष्म से ही स्थूल शासित होता है। भीतरी जगत को जानने के लिए गोते लगाना चाहिए। बाहर रहो किन्तु भीतर जियो तभी आत्मा को जान सकते हो। भाव, विचार, व्यवहार सब भीतर से आते है। वहां शुद्धिकरण होता है। आंतरिक सिस्टम बहुत बड़ी फेक्ट्री है उसे ठीक से समझना चाहिए। शक्ति भीतर है इसलिए उस शक्ति को पहचानना चाहिए। भीतर से रूपान्तरण होता है। मनुष्य का जीवन क्षणभंगुर है। पत्ते पर स्थित ओस बिन्दु की तरह हवा के झकोरे खाकर नाशवान है। इस छोटे से आयु खंड में जिसने जितना धर्म कर्म कर लिया उसका जीवन उतना ही सार्थक है और

जिसने व्यर्थ में ही जीवन को गवा दिया वह अपने जीवन के मूल्य को नहीं समझ पाया। जीवनकाल में धर्म ही मनुष्य को त्राण दे सकता है। धर्म की व्याख्या करने के लिए इसके लौकिक और पारलौकिक स्वरूप को समझना आवश्यक है। लौकिक धर्म वह धर्म है जिसे हम इस लोक में करते है और उसका फल भोगते है। पारलौकिक धर्म इस लोक से परे है और वहीं मानव जीवन की सच्ची कमाई है। इसी धर्म को प्राप्त करने के लिए मानव को प्रयास करना चाहिए। इस तथ्य की सत्यता को हृदयंगम कर भारतीय ऋषियों ने अपने वेद ज्ञान के संस्मरणों, निष्कर्षों को स्मृति शास्त्र के रूप में मानव समाज के हितार्थ प्रगट किया। जिससे वे भोगवाद की आसुरीधारा में न बहकर आत्मकल्याण का सर्वप्रथम ध्यान रखें और अर्थ तथा काम के साथ ही धर्म और मोक्ष के साधन के लिये भी प्रयत्नशील रहें। मनुष्य का आध्यात्मिक विकास तभी सम्भव है, जब वह अपना आचरण शुद्ध रखे और संयम नियम का पालन करता रहे।